वीर संवत २४९२, माघ कृष्णपक्ष ०)),रविवार

दि.२०-२-१९६६, गाथा-९, प्रवचन नं.-३१

'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला' है, उसकी चौथी ढाल चलती है। 'दौलतरामजी' एक दिगम्बर पंडित हुए। पंडित ने गृहस्थाश्रम में रहकर जगत के उपकार लिये, बुद्धि... एक बुद्धिसागर है, क्या कहते हैं ? 'बुधजन' ढाल, 'बुधजन' की ढाल है, उसमें से 'छहढाला' (बनाकर) अपने न्याय से विषय (लिया है)। उसकी चौथी ढाला। 'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला', उसकी चौथी ढाल की नौंवी गाथा, उसकी अन्तिम की बात चलती है। देखो ! क्या ? अन्तिम शब्द है, उसका अर्थ है।

'**लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ;**' नौंवी गाथा का सार है। देखो ! यह 'छहढाला' तो बहुत प्रचलित है। 'छहढाला' में क्या भरा उसकी बहुत कठिन, सूक्ष्म बात है। अनन्तकाल से पहले आत्मा क्या चीज़ है ? उसका सम्यग्दर्शन अनन्तकाल में एक सैकेण्ड भी किया नहीं। समझ में आया ?

'छहढाला' की चौथी ढाला की नौंवी गाथा है। क्या कहते हैं ? देखो ! हिन्दी में नौंवी, गुजराती में आठवीं।

लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ;
तोरि सकल जग द्वंद-फंद नित आतम ध्याओ।

यह सम्यग्ज्ञान की बात करते हैं, क्या कहा ? कि, अनन्त-अनन्त काल में अनन्त बार नौंवीं ग्रैवेयक गया। वह पहले आ गया है।

मुनिव्रत धार अनन्तबार, ग्रीवक उपजायो;
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।

उसका क्या अर्थ है ? कि, यह आत्मा अनंत बार नौंवी ग्रैवेयक तक, नरकयोनि निगोदयोनि आदि (में) अनन्त अवतार करते-करते, नौंवी ग्रैवेयक के भी अनन्त भव किये। नौंवीं ग्रैवेयक में तो कौन जा सकता है ? कि, जिसकी क्रियाकाण्ड, बहुत शुक्ललेश्या होती है। समझ में आया ? शुक्ललेश्या, भाई ! शुक्ललेश्या दूसरी चीज़ है। शुक्ललेश्या ऐसी चीज़ है, जिसके परिणाम में शुभभाव अति तीव्र हो, शुभभाव तीव्र हो, तब उसे शुक्ललेश्या होती है।

कहते हैं, नौंवी ग्रैवेयक अनन्तबार गया, तब उसका दिगम्बर नग्न लिंग था, अट्ठाईस मूलगुण भी उसका स्पष्ट-स्वच्छ था और दूसरे देव की इन्द्राणी डिगाने आये तो डिगे नहीं, इतना तो उसका ब्रह्मचर्य का मन का रंग था। उसके लिये आहार बनाकर, चौका बनाकर (बनाया हो) तो प्राण जाये तो भी उसके लिये बनाया आहार लेते नहीं। ऐसे अनन्तबार नौंवीं ग्रैवेयक गया, तब शुक्ललेश्या का भाव होकर अनन्तबार नौंवी ग्रैवेयक का अवतार धारण किया, लेकिन आत्मा क्या चीज़ है, उसके भान बिना अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत 'आतमज्ञान बिन सुख लेश न पाया' - उसका अर्थ क्या ? कि, पंच महाव्रत आदि, सम्यक् आत्मा के आनन्द के अनुभव बिना अट्ठाईस मूलगुण के व्रत का राग, उसको यहाँ 'दौलतरामजी' कहते हैं, भगवान तो कहते ही हैं कि, वह तो दुःखरूप भाव था। भाई !

'आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायौ' का अर्थ क्या ? सुख न पाया तो क्या पाया ? दुःख। वह तो आया उसमें - 'छहढाला' में। समझ में आया ? क्योंकि आत्मा में जितने शुभ और अशुभभाव होते हैं, सब आस्रवभाव हैं, रागभाव हैं, विभावभाव हैं, विकार भाव हैं। उसमें शुभभाव हो तो पुण्य बंधे, स्वर्गादि मिले पापभाव हो तो नरक, निगोदादि मिले। उसमें आत्मा की श्रद्धा और आत्मा के ज्ञान बिना जन्म-मरण का अन्त कभी आता नहीं।

कहते हैं कि, 'लाख बात की बात' का क्या अर्थ किया ? देखो, अन्त में। उसका हिन्दी। **'जैनधर्म के समस्त उपदेश का सार यही है...'** जैनधर्म के समस्त उपदेश का सार यही है **'कि-शुभाशुभभाव, वह संसार है;...'** समझ में आया ? आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द निर्मलानन्द भगवान (स्वरूप है), उसका अन्तर सम्यग्दर्शन-अनुभव के बिना और साथ में स्व-चैतन्य का स्वसंवेदनज्ञान... स्वसंवेदनज्ञान (अर्थात्) आत्मा आत्मा का वेदन ज्ञान में

आनन्द का करे, उसका नाम स्वसंवेदन, आत्मज्ञान, सम्यग्ज्ञान कहते हैं। इस सम्यग्ज्ञान बिना और अपनी सम्यक् प्रतीति, अनुभव-आनन्द के अनुभव के अन्तर भान बिना उसने शुभाशुभभाव अनन्त बार किये, परन्तु उससे जन्म-मरण का अन्त आता नहीं। समझ में आया ? क्योंकि शुभाशुभभाव संसार है। आहा..हा... ! भक्ति का, पूजा का, दया का, दान का, महाव्रत का, बारह व्रत का भाव शुभ है, वह उदयभाव है, वह विकार है, उसे भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर तीर्थंकरदेव बंध का कारण कहते हैं। अबन्धस्वभाव भगवान आत्मा... (है)।

'नियमसार' में 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' ने पहले श्लोक में कहा है, '**णियमेण य जं कज्जं,**' शब्द है न ? भाई ! '**णयमेण य जं कज्जं।**' ये शब्द हैं, 'नियमसार' में है। कौन-सी गाथा है ? तीसरी, तीसरी। तीसरी गाथा है, देखो ! 'णियमेण य जं कज्जं' क्या शब्द है ? नियम से जो निश्चय कर्तव्य है। यहाँ 'निश्चय' कहा न ? '**लाख बातकी बात यही, निश्चय उर लाओ;**' वह निश्चय क्या ? वह निश्चय क्या ? कि, '**णियमेण य जं कज्जं ते णियमं णाणदंसणचरित्तं।**' भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप अतीन्द्रिय अनाकूल आनन्दकन्द आत्मा है। इस अनाकुल आनन्दस्वरूप का '**णियमेण**' निश्चय से। सम्यग्दर्शन निश्चय से जीव को कर्तव्य-करने योग्य है। समझ में आया ? शुभाशुभभाव करने योग्य नहीं है। कर्तव्य नहीं है, ऐसे कहा, देखो ! समझ में आया ? आता है। सम्यग्ज्ञानी को भी जब तक वीतरागभाव न हो, तब तक ऐसा शुभभाव आता है, होता है, होय है, परन्तु वह '**णियमेण य जं कज्जं**' कार्य नहीं। आहा..हा... ! क्या (कहा) ?

नियम से करने योग्य हो तो '**तं णियमं णाणदंसणचरित्तं**' - यहाँ पहले से '**णाणदंसणचरित्तं**' लिया है। 'तत्वार्थसूत्र' दर्शन-ज्ञान-चारित्र से लिया है। क्योंकि ज्ञान लिया है कि, अपना और पर का अन्तर सम्यक् बोध हुए बिना प्रतीति सम्यग्दर्शन, भान बिना, अनुभव बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। समझ में आया ? '**स्वानुभूत्याचकासते**' 'समयसार' के पहले श्लोक में 'अमृतचंद्राचार्य' महाराज (कहते हैं), '**नमः समयसाराय स्वानुभूत्याचकासते**' - भगवान आत्मा, पुण्य-पाप के राग से प्रसिद्ध नहीं होता। अन्तर में उसकी प्रसिद्धि, सम्यग्दर्शन-ज्ञान की (प्रसिद्धि) शुभाशुभभाव से नहीं होती। आहा..!

'**स्वानुभूत्याचकासते**'।

भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' दो हजार वर्ष पहले दिगम्बर मुनि इस भरतक्षेत्र में हुए, जिनको महान लब्धि थी, उस लब्धि से 'कुन्दकुन्दाचार्य' महाराज देहसहित भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ 'सीमंधर' परमेश्वर महाविदेहक्षेत्र में बिराजते हैं, वहाँ गये थे, वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे। समझ में आया ? भगवान 'सीमंधर' परमात्मा वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में बिराजते हैं। उस समय भी बिराजते थे। क्योंकि उनका आयुष्य करोड़ पूर्व का है। करोड़ पूर्व का आयुष्य ! ओ..हो..हो... ! करोड़ पूर्व किसे कहते हैं मालूम है ? नहीं ? एक पूर्व में सत्तर लाख करोड़ वर्ष और छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं, उसे एक पूर्व कहते हैं। ओ..हो... ! क्या उसमें ? उसमें तो थोड़ा आया। सत्तर लाख करोड़। एक करोड, दो करोड, तीन करोड ऐसे नहीं, एक हजार करोड़ ऐसे नहीं, लाख करोड ऐसे नहीं, सत्तर लाख करोड़। सत्तर लाख करोड़ और उपर छप्पन हजार करोड़। इतने वर्ष का एक पूर्व होता है। ऐसा-ऐसा एक करोड़ पूर्व का भगवान का आयुष्य है।

'सीमंधर' परमात्मा वर्तमान में केवलज्ञानी समवसरण में बिराजते हैं। इन्द्र उपर से व्याख्यान सुनने को, प्रवचन सुनने को (जाते हैं)। वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में मनुष्य देह में बिराजते हैं, इन्द्र जाते हैं, नागेन्द्र, सुरेन्द्र, नरेन्द्र, नाग और बाघ (शेर) सब भगवान का प्रवचन सुनने जाते हैं। वहाँ 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' गये थे। दिगम्बर संत मुनि दो हजार वर्ष पहले संवत ४९ में भरतक्षेत्र में (थे), वे यहाँ से वहाँ गये, देह (सहित), हाँ ! आहारकशरीर नहीं था। पहले चौदह पूर्व और आहारकशरीर थे, वह नहीं था। लब्धि थी, जमीन से चार अंगुल उपर चलने की (लब्धि थी)।

भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्य' महासंत मुनि आचार्य (को) लब्धि थी तो वहाँ गये थे। वहाँ से आकर शास्त्र बनाये हैं। 'समयसार', 'नियमसार', 'प्रवचनसार', 'पंचास्तिकाय' इत्यादि। उसमें यहाँ ('नियमसार' में) तीसरी गाथा में कहते हैं, अ..हो.. ! यहाँ भी वही कहते हैं, भाई ! '**लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ**' यह 'दौलतरामजी' कहते हैं। पूर्व के आचार्यों ने कहा, वही कहते हैं, अपने घर की बात नहीं कहते।

यहाँ 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' कहते हैं, '**णयमेण य जं कज्जं**'। जो आत्मा को निश्चय से- वास्तव में करने योग्य हो तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र (करने लायक है)। समझ में आया ? और वहाँ भी लिया है, '**विवरीयपरिहरत्थं भणिदं खलु सारमिदि वयणं।**' इस शास्त्र का नाम 'नियमसार' है। नियम और सार। नियम से अपना आत्मा शुद्ध अकंडानन्द प्रभु पूर्ण आनन्द का कन्द है, ऐसा स्वसन्मुख होकर (अनुभव करना)। शरीर, वाणी, मन की जड़ की क्रिया भिन्न, पुण्य-पाप का भाव बन्ध का कारण है, वर्तमान एक समय की वर्तमान अवस्था है वह तो अल्प ज्ञान, अल्प दर्शन, अल्प वीर्य है, इतना मैं नहीं। मैं तो एक सैकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण ज्ञान से भरा, पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द से भरा, पूर्ण शांति अर्थात् चारित्र से (भरा), स्वरूप चारित्र, हाँ ! और पूर्ण दृष्टा भाव से भरा, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण विभूता, पूर्ण प्रभुता, पूर्ण स्वसंवेदता (से भरा हूँ)। पूर्ण स्वसंवेदता का अर्थ - मैं मेरे से वेदन में आनेवाला हूँ, ऐसा आत्मा में एक गुण है। क्या कहा, समझ में आया ?

शुभाशुभ विकल्प राग है, उससे आत्मा वेदन में, जानने में आता है - ऐसा आत्मा में कोई गुण है नहीं। समझ में आया ? आत्मा में एक ऐसा गुण है, कहते हैं कि, प्रकाशगुण। प्रकाश का अर्थ '**णियमेण य जं कज्जं**' अपना शुद्ध भगवान आत्मा अपने से '**स्वानुभूत्याचकासते**' वह तो अपना अनुभव, पुण्य-पाप के राग से पृथक् होकर अन्तर स्वरूप का स्वसंवेदनज्ञान का आनन्द का अनुभव करके, अपनी अपने से प्रसिद्धि करते हैं, वह अपना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वही नियम से अपना कर्तव्य अर्थात् कार्य है। आहा..हा..! समझ में आता है ? डॉक्टर ! लिखा है न ! देखो ! उसमें लिखा है।

'**जैनधर्म के समस्त उपदेश का सार यही है कि-शुभाशुभभाव, वह संसार है; इसलिये उसकी रुचि छोड़कर...**' है ? '**स्वोन्मुख होकर निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक निज आत्मस्वरूप में एकाग्र (लीन) होना ही जीव का कर्तव्य है।**' उनके घर की बात नहीं है। '**लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ;**' मैं एक भगवान पूर्णानन्दस्वरूप (हूँ)। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आता है या नहीं ? 'बनारसीदास' में। 'समयसार नाटक'। 'चेतनरूप अनूप अमूरत' - मैं एक चैतन्य भगवान अतीन्द्रिय आनन्दकन्द, अनूप अर्थात् जिसे कोई कोई उपमा नहीं, अमूरत (अर्थात्) जिसमें रंग, गंध, रस, स्पर्श नहीं अथवा जिसमें अमूरत

(अर्थात्) ये विकारी परिणाम भी जिसमें नहीं। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' मेरा स्वभाव तो अन्दर परमानन्द सिद्ध समान मेरी चीज़ है। यह 'बनारसीदास' कहते हैं, परन्तु अनादिकाल से **'मोह महातम आतम अंग, कियौ परसंग महा तम घेरौ।'** कर्म ने नहीं, मैंने मोह माहात्म्य किया; पर का माहात्म्य किया, अपना माहात्म्य अनादि से छोड दिया। समझ में आया ?

भगवान पूर्णानन्द प्रभु, जिसको सर्वज्ञदेव आत्मा कहते हैं, जिसको सर्वज्ञदेव पूर्णानन्द प्रभु पुण्य-पाप के आस्रव से रहित, जड़ की क्रिया देह, वाणी, मन से रहित ऐसा आत्मा, उसकी मैंने अनन्तकाल में संभाल की नहीं, उसका भान किया नहीं। वह तो अनन्तकाल से जो करने योग्य कार्य था, वह किया नहीं। समझ में आया ? करने योग्य क्या था ? **'णियमेण य जं कज्जं त णियमं णाणदंसणचरित्तं।'** यहाँ स्वसन्मुख कहते हैं वह। स्वसन्मुख। वह तो ग्यारहवी गाथा में आया न ? भाई ! **'भूतार्थ अभिगताहा:'** अथवा

ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।।११।।

भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' दिगम्बर संत मुनि हुए, उनके बाद 'अमृतचंद्राचार्य' ११०० वर्ष पहले दिगम्बर संत हुए, वे कहते हैं कि, **'स्वानुभूत्याचकासते'** समझ में आया ? तेरा आत्मा अन्तर में... भूतार्थ का अर्थ भी उन्होंने किया **'भूदत्थमस्सिदो'** भगवान ! तुम तो भूतार्थ अर्थात् त्रिकाल आनन्दकन्द ध्रुव धातु सत् चैतन्यसत् है, ऐसा चैतन्य महासत् प्रभु, उसका आश्रय लेने से, उसका आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया ? भाई ! ये सौभाग्य आत्मा की बात करते हैं, देखो यहाँ ! आहा..हा... !

भगवान आत्मा भूतार्थ **'भूदत्थमस्सिदो खलु'** भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव'ने कहा, 'अमृतचंद्राचार्य' ने कहा, अ..हो... ! शुद्धनय के अनुसार शुद्ध चिदानन्द प्रभु अंतर्मुख होकर अपना पूर्ण शुद्ध द्रव्यस्वभाव, परमात्मस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, एकरूप अभेदस्वभाव का आश्रय करते हैं अर्थात् उसके स्वसन्मुख होते हैं, उसे सम्यग्दर्शन होता है और सम्यग्दर्शन हुए बिना ज्ञान सम्यक् होता नहीं और सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना सम्यक्चारित्र कभी तीनकाल तीनलोक में होता नहीं। वह पहले आ गया न ? भाई ! पहले आ गया न ? क्या आया ?

१७ वाँ श्लोक है न ? तीसरी ढाल का १७ वाँ श्लोक। 'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला'।

'**मोक्षमहलकी परथम सीढी, या बिन ज्ञान चरित्रा;**' भगवान आत्मा.. ! १७ वाँ श्लोक है, १७वाँ। हिन्दी में ८३ पन्ना है। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन '**णियमेण य जं कज्जं**' जो भूतार्थ आश्रित सम्यग्दर्शन होता है, जो त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति भगवान, उसके अन्तर सन्मुख होकर अपनी निर्मल पर्याय सम्यग्दर्शन में आत्मा अतीन्द्रिय का स्वाद आता है; सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है - ऐसा जो सम्यग्दर्शन (है), वह मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी (है)। है ? पढ़ा है या नहीं ? पहले कितनी बार पढ़ा है ?

'**मोक्षमहलकी परथम सीढी, या बिन ज्ञान चरित्रा;**' ऐसा सम्यग्दर्शन, स्वानुभव... आत्मा आनन्दकन्द की अंतरदृष्टि, अनुभव, इस अनुभव के बिना ज्ञान और चारित्र सम्यक्ता न लहे। सच्चापना प्राप्त नहीं करता। मिथ्याचारित्र और मिथ्याज्ञान चार गति में भटकने का कारण है। शास्त्र का पढ़ा हुआ, ग्यारह अंग का पढ़ा हुआ, नौ पूर्व का पढ़ा हुआ ज्ञान भी दुःखरूप है। समझ में आया ? अपने आत्मा का सम्यक् चैतन्यमूर्ति भगवान, जो नियम से करने लायक भगवान आचार्य कहते हैं, ऐसा अनुभव सम्यग्दर्शन हुए बिना तेरा ज्ञान और तेरी व्रतादि की क्रिया सम्यक्ता न लहे, सच्चापन प्राप्त नहीं करता। उसे बालतप और बालतप कहने में आता है। समझ में आया ? आहा..हा... !

अनन्तकाल (में) ऐसा समय आया तो समय गँवा दिया। अनन्त-अनन्त काल में... समझ में आया ? सच्चा समय आया, सत्य क्या है (वह) सुनने में भी आया, समझे नहीं, समझ में लिया नहीं। बाहर में धंधा, धंधा व्यवहार धंधा, ये भी व्यवहार धंधा। 'योगसार' में कहते हैं न ? भाई ! व्यवहार धंधा, पुण्य की क्रिया व्यवहार धंधा है। भगवान आत्मा, नियम से करने योग्य जो आत्मा की क्रिया सम्यग्दर्शन हुआ नहीं तो ज्ञान और चारित्र सच्चापना प्राप्त नहीं करता, झूठापन प्राप्त करता है। उसका ग्यारह अंग का अभ्यास, नौ पूर्व पढ़ा वह भी झूठा ज्ञान (है) और सम्यग्दर्शन बिना, आत्मा की अनुभूति बिना, आत्मा के आनन्द के अनुभव की भूमिका प्रकट हुए बिना जितना व्रत क्रियाकांड करे, सबको मिथ्याचारित्र कहने में आता है।

'**सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।**' 'दौलतरामजी' कहते हैं, अरे..! भव्य जीव ! तूने

अनन्तकाल में सम्यग्दर्शन धारण किया नहीं तो अब तो धारण कर, अब तो प्रकट कर। '**दौल समझ सुन चेत सयाने**' हे सयाना ! '**काल वृथा मत खोवै।**' अनन्तकाल में ऐसा काल मिला, दुनिया के लिये काल मत गँवा। तेरा आत्मा क्या चीज़ है, उस ओर तेरा आराधन, सम्यग्दर्शन की और होना चाहिए। '**यह नरभव फिर मिलन कठिन है, यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहीं होवै।**' यदि सम्यक् अनुभव... यह सम्यक् रत्न की बात करते हैं। तीन रत्न हैं या नहीं ? तीन रत्न नहीं कहते ? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः; ये तीन रत्न हैं। इस रत्न से मुक्ति मिलती है। मुक्ति अर्थात् केवलज्ञान, केवलदर्शन सिद्ध की पर्याय। तीन रत्न क्या ? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र। यहाँ सम्यग्दर्शन की बात करते हैं। अनन्तकाल में तूने यह किया नहीं तो अरे... ! प्राणी ! अरे... ! जीव ! भगवान आत्मा ! देखो ! सब की रुचि छोड़कर...

भगवान ! 'नियमसार' (में) तो 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' वहाँ तक कहते हैं कि, शरीर, वाणी, मन, कर्म - ये तो अजीव है लेकिन पुण्य-पाप का भाव भी अजीव और परद्रव्य है। 'नियमसार' ५० वीं गाथा। समझ में आया ? लेकिन आत्मा में ज्ञान, दर्शन, वीर्य का क्षयोपशम, विकास, वर्तमान समय की पर्याय प्रकट है, उसको भी भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' परद्रव्य कहते हैं। समझ में आया ? डॉक्टर ! कठिन पड़ता हो तो धीरे-धीरे कहेंगे। यहाँ कोई दिन नहीं चला जाता है। देखो !

पुव्वुत्तमयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं;
सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्चं हवे अप्पा।।५०।।

भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्य' महाराज संत दिगम्बर महान संत, वर्तमान में स्वर्ग में बिराजते हैं। पंचमकाल के संतो केवलज्ञान है नहीं तो वर्तमान में स्वर्ग में बिराजते हैं, एक भव करके केवलज्ञान पाकर मोक्ष में जाने की तैयारी उनकी है। वे भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' दिगम्बर संत कहते हैं कि, पूर्व में जो आत्मा का भाव कहा, ४९ गाथा तक बहुत कहा, थोड़ी सूक्ष्म बात है। भगवान आत्मा ! '**लाख बातकी बात यही, निश्चय उर लाओ;**' उसका अर्थ कि, एक समय में प्रभु शरीर, वाणी, कर्म तो जड़ है ही, परद्रव्य है ही (उन्हें) दृष्टि में छोड़ दे; और

पुण्य-पाप का भाव विकार है वह भी परद्रव्य है, परभाव है, हेय है - तीन बोल लिये। इसके अलावा अपनी वर्तमान ज्ञान की क्षयोपशम पर्याय-विकास की पर्याय है, ज्ञान, दर्शन, वीर्य की (विकसीत पर्याय है), उसको भी यहाँ भगवान आचार्य परद्रव्य कहते हैं, परभाव कहते हैं, हेय कहते हैं। तीन विशेषण है, देखो !५० वीं गाथा। बहुत बार व्याख्यान हो गये हैं।

'**परदव्वं परसहावमिदि हेयं**' भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्य' प्रभु कहते हैं कि, आत्मा किसे कहते हैं ? कि, आत्मा एक समय की पर्याय जो विकास की है, वह आत्मा नहीं। आहा..हा... ! विकास समझते हैं ? विकास (अर्थात्) क्षयोपशम। भाषा नहीं समझते ? ये क्षयोपशम है न ? ज्ञान की पर्याय का विकास, उघाड है न ? उघाड़। उघाड़ को क्या कहते हैं ? विकास... विकास को हिन्दी में क्या कहते हैं ? उघाड़। उघाड़ कहते हैं न ? आत्मा तो केवलज्ञानकन्द है, पूर्णानन्द है परन्तु उसकी पर्याय में जो क्षयोपशमभाव है - मति, श्रुत, अवधि और मन:पर्यय क्षयोपशमभाव है, उसको भी यहाँ भगवान तो परद्रव्य कहते हैं।

मुमुक्षु :- क्यों ?

उत्तर :- क्योंकि उसका आश्रय लेने से आत्मा की शान्ति नहीं मिलती। पर्याय का आश्रय लेने से आत्मा की शांति की वृद्धि होती नहीं। समझ में आया ? सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन की बात बाद में करो। लेकिन पहले, देखो ! ज्ञान का क्षयोपशम-विकास है, दर्शन का उघाड़ है, वीर्य का उघाड़ है। है न वर्तमान में ? पर्याय में है न ? उसको भी भगवान परद्रव्य कहते हैं। क्यों ? कि, उसके आश्रय से आत्मा को सम्यग्दर्शन नहीं होता। क्या कहा ?

मुमुक्षु :- समझ में नहीं आया।

उत्तर :- समझ में नहीं आया ? फिर से कहते हैं, सुनो ! यह आत्मा भगवान एक समय में - सैकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण अखण्ड द्रव्यस्वभाव वस्तु है। इसके अलावा, पुण्य-पाप के भाव को तो परद्रव्य कहा, परवस्तु कहा, क्योंकि वह अपनी चीज़ नहीं; छूट जाती है। शरीर, वाणी, कर्म तो अजीव हैं, पर पृथक् हैं, परन्तु अपनी वर्तमान अवस्था में ज्ञान, दर्शन, वीर्य का उघाड़ जो है उसको परद्रव्य कहा, परभाव कहा क्योंकि उसमें सम्यग्दर्शन की नयी पर्याय उसमें से उत्पन्न नहीं होती। थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई !

सम्यग्दर्शन की पर्याय... सम्यग्दर्शन पर्याय है, गुण नहीं; गुण त्रिकाल है। सम्यग्दर्शन प्रथम सीढ़ी-मोक्षमहल की पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन जो है, वह शरीर, वाणीमें से नहीं आता, पुण्य-पापभावमें से नहीं आता, ऐसे वर्तमान क्षयोपशम ज्ञान, दर्शन, वीर्य है, उसमें से नहीं आता। भगवान पूर्णानन्द प्रभु शुद्धद्रव्य, ध्रुव है, उसकी अंतरदृष्टि करने से उसमें से सम्यग्दर्शन पर्याय प्रकट होती है। आहा..हा... ! समझ में आया या नहीं ? इतने वर्ष से भक्ति तो बहुत करते हो।

मुमुक्षु :- ये आत्मा की भक्ति...

उत्तर :- आत्मा की भक्ति चलती है। आत्मा की भक्ति का नाम सम्यग्दर्शन। पर की भक्ति का नाम शुभभाव।

यह निश्चयभक्ति। भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण द्रव्य, उसकी एक समय की पर्याय को भी यहाँ परद्रव्य कहकर, परभाव कहकर हेय कर दिया। एक रहा भगवान पूर्ण अखंडानन्द ध्रुव वस्तु, उसकी अन्तर दृष्टि करने से, उसका आश्रय लेने से, अनन्त जीव को जितनों को सम्यग्दर्शन हुआ, है और होगा सबको अन्तर्मुख पूर्णानन्द प्रभु की अन्तर दृष्टि करने से, उसके आश्रय से होता है। समझ में आया ? भाई ! बहुत सूक्ष्म है, भाई ! बात चलती नहीं, बाहर की क्रिया करके जिंदगी पूरी (करते हैं)। आत्मा का लाभ सम्यग्दर्शन की श्रद्धा क्या है, उसका भी पता नहीं। समझ में आया ?

सम्यग्दर्शन, जो द्रव्य वस्तु है... यहाँ कहा न ? स्वसन्मुख होकर... स्वसन्मुख का वह अर्थ है। पूर्ण वस्तु, पूर्ण वस्तु। स्व पूर्ण वस्तु के सन्मुख। वर्तमान पर्याय, राग और निमित्त का आश्रय छोड़कर पूर्ण स्वभाव का अन्तर आश्रय लेना, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। अनन्तकाल में नहीं हुई (ऐसी) सम्यग्दर्शन पर्याय अपने द्रव्य के आश्रय से होती है। समझ में आया ?

आचार्य तो इससे भी आगे बात करते हैं कि, सम्यग्दर्शन पर्याय हुई और अपने स्वरूप का सम्यग्ज्ञान हुआ, उसको भी यहाँ तो आचार्य परद्रव्य कहते हैं, परभाव कहते हैं, हेय कहते हैं। क्यों ? कि, जो पर्याय अन्दर में द्रव्य सन्मुख होकर प्रकट हुई, उस पर्याय के आश्रय से, नई

पर्याय - शुद्धि की वृद्धि, उसके आश्रय से नहीं होती। समझ में आया या नहीं ? कभी बात सुनने में आती है। क्या (कहा) ? फिर से ? फिर से कहते हैं, भाई ! भाई कहते हैं फिर से कहो। वन्समोर, कहते हैं न ? ये तो फिर से समझने जैसी बात है।

ऐसी बात अनन्तकाल में सुनी नहीं। सुनी हो तो अन्दर में यथार्थपने रुचि होनी चाहिए। आचार्य तो 'समयसार' की चौथी गाथा में कहते हैं, '**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंध कहा।**' '**सुदपरिचिदाणुभुदा**' अरे.. ! भगवान ! अरे.. जीव ! आचार्य तो भगवान कहकर बुलाते हैं, हाँ ! 'समयसार' की ७२ वी गाथा है, उसमें भगवान आत्मा कहते हैं। भगवान आत्मा है न, प्रभु ! तुम तो महिमावंत आनन्दकन्द प्रभु हो न ! भगवान ! तेरी चीज़ की बात तुने अनन्तकाल में कभी सुनी नहीं। सुने बिना परिचय किया नहीं, परिचय किये बिना अनुभव हुआ नहीं। तो क्या हुआ ? काम भोग - बंधकथा। उसका अर्थ राग का करना, पुण्य-पाप भाव का करना और पुण्य-पाप का भोगना। बस ! वह बात अनन्तकाल में अनन्तबार सुनी है। शुभाशुभभाव का करना। काम-इच्छा, राग। भोग-अनुभव। पुण्य-पाप भाव का करना और उसे भोगना। वह बात अनन्तकाल में अनन्तबार सुनी है। तेरे परिचय में भी यह बात अनन्तबार आ गई है और तेरे अनुभव में भी आ गई है। '**एयत्तस्सुवलंभो**' परन्तु भगवान इस पुण्य-पाप के विकल्प से पार है, अखंडानन्द प्रभु है, उसकी बात - एकत्व की, राग से पृथक् की बात भगवान तूने अनन्तकाल में यथार्थपने सुनी नहीं। समझ में आया ? सुनि नहीं तो परिचय में आया नहीं, परिचय में आये बिना अपना अनुभव उसे हुआ नहीं और जिसको अनुभव है - ऐसे सम्यग्ज्ञानी की सेवा उसने कभी की नहीं, ऐसा उसमें लिखा है। आता है न ? भाई ! 'समयसार' चौथी गाथा। '**एयत्तणिच्छयगदो**' तीसरी (है)।

कहते हैं, आत्मा... यहाँ आत्मा किसको कहते हैं ? '**सग्दव्वं.. सग्दव्वं, स्व द्रव्यं, स्व द्रव्यं**' अपनी पर्याय में स्वद्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान जो हुआ, उस पर्याय को भी परद्रव्य कहते हैं। वह परभाव है। क्षायिक समकित प्रकट हुआ, उसको भी भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' परद्रव्य कहते हैं, परभाव कहते हैं, हेय कहते हैं। क्यों ? कि, सम्यग्दर्शन स्ववस्तु के आश्रय से हुआ परन्तु उस पर्याय का आश्रय करने से नयी शान्ति, नया धर्म उत्पन्न होता नहीं। आहा..हा... ! क्योंकि द्रव्य में से पर्याय आती है; पर्यायमें से पर्याय नहीं आती है।

राग में से तो नहीं, निमित्तमें से तो नहीं। बात में इतना फर्क है। अपनी पर्याय निमित्त से प्रकट होती है वह तो नहीं, ये शुभविकल्प है, उसमें से तो नहीं, परन्तु सम्यग्दर्शन की पर्याय द्रव्य के आश्रय से प्रकट हुई उसके आश्रय से भी नई शुद्धपर्याय प्रकट नहीं होती क्योंकि पर्यायमें से पर्याय नहीं होती है; द्रव्यमें से पर्याय होती है। भाई !

द्रवता है ना ? द्रवति इति द्रव्यं। द्रव्य जो वस्तु अखंडानन्द प्रभु पूर्णानन्द सच्चिदानन्द परमपारिणामिक स्वभावभाव ज्ञायकभाव के आश्रय से जैसा सम्यग्दर्शन हुआ, उसके आश्रय से सम्यग्ज्ञान हुआ, उसके आश्रय से स्थिरता-चारित्र की लीनता हुई; जो हुई उसमें से नया चारित्र नहीं आता। आहा..हा...! समझ में आया ? पर्यायमें से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। नयी अवस्था तो द्रव्य में से उत्पन्न होती है। द्रव्य एक स्वरूप अखंडानन्द भगवान का आश्रय सम्यग्दृष्टि कभी छोडते नहीं। समझ में आया ? एक समय भी राग और वर्तमान अवस्था का अवलंबन यदि मुख्य हो जाये तो दृष्टि मिथ्यादृष्टि हो जाये। आहा..हा...! समझ में आया ? थोड़ी सूक्ष्म बात निकल गई।

यह जैनधर्म का देखो ! '**जैनधर्म के समस्त उपदेश का सार...**' भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ, जिन्होंने चार अनुयोग कहे, चारों अनुयोग का सार वीतरागता (है), शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता (है)। 'पंचास्तिकाय' में आता है न ? वीतरागता का अर्थ - वीतरागता उत्पन्न कैसे होती है ? द्रव्य वस्तु अखंडानन्द प्रभु में ऐसी अनन्त वीतरागता पड़ी है - द्रव्य में, वस्तु में अनन्त वीतरागता पडी है। आहा..हा...! ऐसा द्रव्यस्वभाव परमात्मस्वभाव परमपारिणामिस्वभाव ज्ञायकस्वभाव एकरूप त्रिकाल अभेदस्वभाव (है) समझ में आता है ? यह बात उसने की नहीं, यह किये बिना मर गया।

कहते हैं, '**णियमेण य जं कज्जं**' जो कहते हैं और पहले '**विपरीयपरिहरत्थं**' कहा। '**विपरीतना परिहार अर्थे 'सार' शब्द योजेल छे।**' भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' कहते हैं, यह आत्मा निश्चय निज स्वरूप के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र करने योग्य है। उससे विपरीत जो शुभाशुभ आदि भाव हैं, उनको छोडने के लिए उसका नाम 'नियमसार' कहा है। नियमसार। समझ में आया ? उसका सार यहाँ 'दौलतरामजी' ने कहा,

लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ;
तोरि सकल जग द्वंद-फंद नित आतम ध्याओ।

ऐसा कहा। '**नित्य**' शब्द क्यों कहा है ? 'नित्य' शब्द है, (क्योंकि) पहले और पीछे आत्मा का ध्यान करो। आहा..हा... ! '**नित आतम ध्याओ**' आत्मा क्या ? यह पूर्णानन्द अखंड ज्ञायकभाव, वह आत्मा। एक समय की पर्याय भी आत्मा नहीं वह तो व्यवहार आत्मा (है)। पुण्य-पाप का भाव आस्रवतत्त्व; कर्म, शरीर आदि अजीवतत्त्व (है)। आत्मा एक समय में पूर्ण ज्ञायकभाव (है)। समझ में आया ? आत्मा उसको कहा। आत्मा कहा न ? पूर्ण एकस्वरूप। नित्य ध्यावो, ऐसे कहा 'नित आतम ध्याओ।' कोई बार नित्य आत्मा के अलावा कोई पर का आश्रय लेना या नहीं ? पर का आश्रय होता है, फिर भी अन्तर में सम्यग्दृष्टि धर्मी को आत्मा अखंडानन्द ज्ञायकभाव का अवलंबन-आश्रय कभी छूटता नहीं। भाई ! है न ? उसमें शब्द है या नहीं ?

'**नित आतम ध्याओ।**' ओ..हो.. ! किसी समय भगवान का ध्यान करना या नहीं ? आता है। जब तक स्वरूप में उपयोग स्थिर होता नहीं, शुद्ध उपयोग (होता नहीं), तब उसका विकल्प ऐसा आता है, परन्तु अन्तर दृष्टि में द्रव्य का आश्रय कभी छूटता नहीं। वस्तु का अन्दर आश्रय छूटे और पर्याय और राग का आश्रय हो जाये (तो) एकान्त मिथ्यादृष्टि हो जाता है। आहा..हा... ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भैया ! अनन्तकाल में कभी सुनी नहीं, समझी नहीं तो किया तो कहाँ से हो ? और यही करने से जन्म-मरण का अन्त आता है, दूसरी कोई क्रियाकाण्ड से जन्म-मरण का अन्त आता नहीं।

कहते हैं कि, '**नित आतम ध्याओ।**' ऐसा क्यों नहीं कहा कि, नित्य राग को करो, शुभराग को करो ? दोष है, वह तो पुण्य है। आता है। करने योग्य नहीं; आता है। ऐसे क्यों नहीं कहा कि, अपनी पर्याय जो प्रकट है, सम्यक् हुआ उसका ध्यान करो ? समझ में आया ? पर्याय प्रकट हुई, अवस्था प्रकट होती है वस्तुमें से, फिर भी वस्तु की नित्य लक्ष्य और दृष्टि रखो। पर्याय का लक्ष्य और दृष्टि का ज्ञान हो, परन्तु आश्रय करने योग्य है नहीं। ऐसी अन्तर दृष्टि हुए बिना उसे सम्यग्दर्शन होता नहीं और सम्यग्दर्शन बिना सम्यग्ज्ञान कहने में आता नहीं।

लाख शास्त्र पढ़े हों, दुनिया (में) लाखों को समझा दे, परन्तु स्वयं यथार्थ समझा नहीं तो क्या समझा दे ? समझ में आया ? फिर भी दुनिया (में) लाखो लोगों को समझा दे तो वह तो विकल्प है। समझाने का तो विकल्प है, उस विकल्प से तो पुण्यबंध है। दूसरों को लाभ होता है उससे अपने को कुछ लाभ होता है ? दूसरा कोई समझ जाये, उसकी पर्याय का लाभ यहाँ होता है या नहीं ? (ये भाई) ना कहते हैं।

लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ;
तोरि सकल जग द्वंद-फंद नित आतम ध्याओ।

'तोरि' (कहा) न ? तो तोड़ने की बात कही न ? तोड़े कौन ? स्वयं तोड़े। दूसरा कोई तोड़ दे ? गुरु और शास्त्र तोड़ दे ? '**तोरि सकल जग द्वंद-फंद,**' कहाँ गये ? भाई ! यहाँ तो कहते हैं कि, लेने की चीज़ तो अन्तर में है, कोई बाहर से दे सकता नहीं। तीनलोक के नाथ तीर्थंकरदेव के पास तेरा द्रव्य पड़ा है ? तेरा द्रव्य तो तेरे पास है। समझ में आया ? और तेरी पर्याय भी तेरे पास है और तेरे द्रव्य में तो अनन्त सिद्ध भगवान हैं। केवलज्ञानी ऐसा कहते हैं कि, तेरे द्रव्य में अनन्त केवलज्ञान हैं। क्यों ?

जब केवलज्ञान होता है, केवलज्ञान। स्वरूप के आश्रय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, चारित्र हुआ, बाद में उसके (स्वरूप के) आश्रय से केवलज्ञान हुआ। केवलज्ञान तो एक समय रहता है ? क्या (कहा) ? केवलज्ञान पर्याय है, गुण नहीं। तो केवलज्ञान एक समय रहता है। दूसरे समय उसका व्यय होता है, क्योंकि 'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्' पर्याय का उत्पाद होता है, पुरानी पर्याय का व्यय होता है, वस्तुरूप से ध्रुव रहती है। केवलज्ञान एक समय की पर्याय दूसरे समय में व्यय हो जाती है। दूसरे समय दूसरा केवलज्ञान उत्पन्न होता है। ऐसा-ऐसा अनन्तकाल केवलज्ञान उत्पन्न होता है वह सब केवलज्ञान आत्मा के ज्ञानगुण में शक्ति पडी है। अन्दर में न हो तो आता कहाँ से है ? समझ में आया ? आहा..हा...! कहो, डोक्टर ! 'अंजनचोर' कहाँ गया ? हमारे भाई ने प्रश्न किया था न ? सोलह वर्ष पहले, सोलह वर्ष हुए (संवत) २००६ की साल। अभी २०२२ (चल रहा है), १६ वर्ष हुए। तुम पहले २००६ की साल में आये थे। पहली बार 'राजकोट' (आये थे)। मानस्तंभ के जन्माभिषेक करते थे, तब

पहली बार देखा। १६ वर्ष हुए, २००६ की साल।

यहाँ कहते हैं, भगवान ! आहा..हा... ! आत्मा एक वस्तु (है), उसमें ज्ञानगुण (है)। इस ज्ञानगुण में अनन्ती केवलज्ञान की पर्याय पडी है। आत्मा में एक आनन्द (गुण है), उसमें अनन्त आनन्द (है), भगवान को जो अतीन्द्रिय आनन्द प्रकट हुआ, वह अतीन्द्रिय आनन्द भी एक समय रहता है, दूसरा समय में दूसरा अतीन्द्रिय आनन्द, तीसरे समय तीसरा अतीन्द्रिय आनन्द, ऐसा अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द सादि अनन्त की जितनी पर्याय हैं, सब आत्मा के आनन्द गुण में पडी हैं। समझ में आया ? आत्मा किसको कहते हैं ? वह बात चलती है। वैसे अनन्त वीर्य। भगवान को अनन्त चतुष्टय प्रकट होता है या नहीं ? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य और अनन्त सुख। तो वह अनन्त (वीर्य) एक समय की पर्याय है, दूसरे समय दूसरी, तीसरे समय तीसरी। ऐसे सादि अनन्त। भूतकाल के काल से भविष्य काल अन्तगुना (है)। ये सब अनन्ती पर्याय एक-एक गुण में पड़ी हैं। ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड भगवान, उसको यहाँ आत्मा कहने में आता है। आहा..हा... ! समझ में आया ?

कहते हैं, **'तोरि सकल जग दंद-फंद, नित आतम ध्याओ।'** आहा..हा... ! यह 'छहढाला' तो (लोग) बहुत पढ़ते हैं और कंठस्थ करते हैं। भाव क्या है ? यहाँ तो 'दौलतरामजी' कहते हैं, अरे.. आत्मा ! जिसको भगवान ने आत्मा कहा, अनन्त पर्याय का पिण्डरूप गुण, अनन्त गुण का एकरूप आत्मा, उसकी अन्तर दृष्टि करो। उसका ज्ञान करो और उसमें लीन हो जाओ। वही मोक्ष का मार्ग नियम से करने योग्य है। बाकी रागादि आता है, जानने योग्य है। समझ में आया ? आहा..हा... !

अभी अर्थ किया था न ? 'स्व अपूर्व अर्थं।' 'स्व अपूर्व अर्थं।' स्व-पर, स्व-पर का ज्ञान। यहाँ कहा न ? स्व-पर का ज्ञान। स्व-पर के ज्ञान का अर्थ क्या किया ? यह ज्ञान की व्याख्या हुई। (उसके पहले) दर्शन की व्याख्या हुई। ज्ञान की व्याख्या सम्यग्ज्ञान। अपना शुद्ध स्वरूप भगवान एकरूप का ज्ञान। ऐसी ज्ञान की अनन्ती अनन्ती पर्याय शुद्ध स्वरूप भगवान एकरूप का ज्ञान। ऐसी ज्ञान की अनन्ती अनन्ती पर्याय अन्तर में पडी है। ऐसे अनन्त गुण के अवलंबन से जो ज्ञान हुआ वह सम्यग्ज्ञान (है)। शास्त्रज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं, वह व्यवहारु ज्ञान

है – पुण्यबन्ध का कारण है। परसत्तावलंबी ज्ञान पुण्यबंध का कारण है, स्वसत्तावलंबी ज्ञान मोक्ष का कारण है।

स्व–पर का भेद – ऐसा ज्ञानमार्ग लिया न ? पहले कहा था। '**तास ज्ञानको कारन, स्व-पर विवेक बखानौ;**' सातवीं, सातवीं गाथा। आपमें छठ्ठी होगी।

धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै;
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै।
तास ज्ञानको कारन, स्व-पर विवेक बखानौ;
कोटि उपाय बनाय भव्य, ताको उर आनो।।

करोड़ उपाय करके भी भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्दमूर्ति है, उसका ज्ञान कर। कैसे ? स्व–पर का भेद करके। स्व–पर का भेद क्या हुआ ? अपना आत्मा शुद्ध चैतन्य का ज्ञान हुआ तो उसमें पुण्य–पाप आदि नहीं है – ऐसा पर का ज्ञान हुआ। अर्थात् अपने आत्मा का, शुद्ध चैतन्य का अन्तर्मुख होकर ज्ञान हुआ, तब बाद में रागादि व्यवहार बाकी रहता है, वह भी जानने योग्य है ऐसा पर का ज्ञान करो। 'स्व अपूर्व अर्थ।' स्व का ज्ञान अपूर्व नाम यह आत्मा नहीं, ऐसा पुण्य–पाप का भाव आदि का ज्ञान करो, है इतना ज्ञान करो। आहा..हा...! भाई ! समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म बात है, भाई ! यह बात तो पहले एकबार कही थी। 'स्व अपूर्व अर्थं।' ऐसे दो शब्द हैं न ? इसमें आया है ना ?

(चौथी ढाल की) पहली गाथा (की) फूटनोट में आता है। देखो ! '**स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्**' 'प्रमेयरत्नमाला' (का सूत्र है)। '**स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं**' क्या कहा ? सम्यग्दर्शन तो हुआ, बाद में ज्ञान का आराधन करो, ऐसा कहा है। ज्ञान तो साथ में उत्पन्न होता ही है। सम्यग्दर्शन कारण, सम्यग्दर्शन कार्य। दीपक कारण, प्रकाश कार्य। परन्तु है साथ में। लेकिन ज्ञान का सम्यग्दर्शन होने के बाद भी अन्तर ज्ञान का आराधन करो। इस ज्ञान की व्याख्या '**स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं**'। स्व भगवान आत्मा का ज्ञान और अपूर्व (अर्थात्) दूसरा। पूर्व–पुण्य, पाप, दया, दान, विकल्प, शरीरादि। अपूर्व अर्थात् यह आत्मा नहीं, वह पर, उसका ज्ञान करो। है, उसका ज्ञान करो, आदरणीय

नहीं। आहा..हा... ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा का स्व का ज्ञान और अपूर्व अर्थ नाम पर का, राग-द्वेष, पुण्य-पाप, दया, दानादि विकल्प उठते हैं, (उसका ज्ञान करो)। भाई ! व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, यह उसमें आ गया। ('समयसार') बारहवीं गाथा में कहा, '**भूदत्थमस्सिदो**' भान हुआ। (बाद में भी) जो राग-द्वेषादि आते हैं, दया, दान, व्रत,भक्ति का परिणाम होता है, (वह) जानने योग्य है। अपना नहीं ऐसा जानने योग्य है। ऐसा स्व-पर का यथार्थ भेदज्ञान करना उसका नाम आत्मज्ञान अथवा सम्यग्ज्ञान कहते हैं। यह मोक्षमार्ग का दूसरा अवयव है। सम्यग्दर्शन पहला भाग है, सम्यग्ज्ञान दूसरा है। वह बात कही।

ज्ञान-दर्शनपूर्वक '**निज आत्मस्वरूप में एकाग्र (लीन) होना ही जीव का कर्तव्य है।**' अब, ज्ञान हो तो बाद में चारित्र होता है, उसकी व्याख्या करेंगे।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❋

अपनेमें केवलज्ञान प्रकट करना - यह तो जीवका स्वभाव है । यह प्रकट नहीं हो सकता- ऐसा न मान । केवलज्ञान प्रकट करना यह दुष्कर है, ऐसा न मान । जीवको परमाणु बनाना हो तो यह नहीं हो सकता । अरे ! रागको नित्य रखना हो तो वह भी नित्य नहीं रख सकता, परन्तु शुद्धता प्रकट करना - यह तो जीवका स्वभाव है । यह कैसे न हो सके ? यह कैसे कठिन है ? जीवमें स्थिर होना , शुद्धता प्रकट करनी - यह तो जीवका स्वभाव होनेसे हो सकता है । अतः ''न हो सके'' ऐसी मान्यतारूप शल्य छोड़ दे । (परमागमसार-३७९)